

गाँधीजी का शिक्षा दर्शन एवं वर्तमान संदर्भ में इसकी प्रासंगिकता

सारांश

गाँधीजी एक युग प्रवर्तक थे। वे केवल एक राजनैतिक नेता, धर्म मर्मज्ञ, समाज सुधारक व दार्शनिक ही नहीं थे, वरन् एक श्रेष्ठ शैक्षिक चिन्तक भी थे। वे शिक्षा को बालक के सर्वोत्तम विकास का प्रमुख माध्यम मानते थे। उनका मानना था कि शिक्षा बालक का जन्मसिद्ध अधिकार होना चाहिए। वे केवल साक्षरता को शिक्षा नहीं मानते थे। उनका मानना था शिक्षा मनुष्य के शरीर, मन, हृदय व आत्मा का विकास करने वाली होनी चाहिए। इसी विचार पर आधारित उनका शिक्षा दर्शन हम जिसे "बुनियादी" शिक्षा या "नई तालीम" के नाम से बेहतर जानते हैं। अगर आज के संदर्भ में देखा जाए तो भी उनका शिक्षा दर्शन उतना ही प्रासंगिक है। आवश्यक है उसे आज की समकालीक परिस्थितियों के अनुसार यथोचित बनाकर समक्ष आधारित क्रियान्वयन प्रदान करने की।

मुख्य शब्द : शिक्षा दर्शन, बुनियादी शिक्षा।

प्रस्तावना

"शिक्षा में मेरा तात्पर्य है— बालक और मनुष्य के शरीर, मस्तिष्क और आत्मा में पाये जाने वाले सर्वोत्तम गुणों का चहुँमुखी विकास।"

—महात्मा गाँधी

गाँधीजी का मानना था कि शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जो बालक की सम्पूर्ण शक्तियों का विकास कर सके। इसके साथ ही गाँधीजी का मूल मंत्र "शोषण विहीन समाज की स्थापना करना भी था। जिसकी प्राप्ति हेतु देश के प्रत्येक नागरिक को शिक्षित भी होना चाहिए क्योंकि शिक्षा के अभाव में एक स्वस्थ समाज का निर्माण असंभव है।

गाँधीजी के अनुसार— *"साक्षरता न तो शिक्षा का अन्त है और ना ही आरम्भ। यह केवल साधन है जिसके द्वारा पुरुष तथा स्त्री को शिक्षित किया जा सकता है।"* उनका विश्वास था कि शिक्षा को बालक की समस्त शक्तियों का विकास करना चाहिये जिससे वह पूर्ण मानव बन जाये। पूर्ण मानव का अर्थ बालक के व्यक्तित्व के चारों तत्वों—शरीर, मन तथा आत्मा के समुचित विकास है। इस प्रकार गाँधी के अनुसार शिक्षा को बालक के शारीरिक, मानसिक अथवा बौद्धिक विकास करना चाहिये। जिससे वह जीवन के अन्तिम लक्ष्य (Ultimate Aim) 'सत्य' को प्राप्त कर सके।

महात्मा गाँधी दुनिया के ऐसे पहले शिक्षा शास्त्री हैं, जिन्होंने आजाद भारत में विचार बीज बोकर कार्य पैदा किया एवं स्वभाव का बीज बोकर सौभाग्य की फसल तैयार की। जिससे देश के तमाम बच्चों के साथ नागरिकों का बौद्धिक, नैतिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक स्तर उन्नत हुआ।

गाँधीजी का शिक्षा दर्शन का सम्बन्ध उस शिक्षा प्रणाली से है, जो बालकों को पुस्तकीय और अव्यावहारिक शिक्षा से हटाकर उद्योग व कौशल आधारित व्यावहारिक और सर्वांगीण विकास की शिक्षा देती है।

गाँधीजी का शिक्षा दर्शन

गाँधीजी परम्परागत अर्थों में दार्शनिक नहीं थे, किन्तु उन्होंने दर्शन की सभी समस्याओं पर गंभीर चिन्तन किया था। वे देश की समस्याओं से भली-भाँति परिचित थे। उस समय की दशा व देश की भावी आवश्यकताओं व चुनौतियों को ध्यान में रखते हुए उनके समाधान को दृष्टिगत रखते हुए 1937 में वर्धा में आयोजित "अखिल भारतीय राष्ट्रीय शिक्षा सम्मेलन" में गाँधीजी ने अपने विचार व्यक्त किये। इन विचारों के आधार पर कालान्तर में "नई तालीम" (बुनियादी शिक्षा) की योजना तैयार की गई। जो 1938 में हरिपुर के अधिवेशन में "वर्धा शिक्षा योजना" के नाम से स्वीकृत हुई। यह बुनियादी शिक्षा कई प्रकार



मनीषा शर्मा

रीडर,
एज्यूकेशन विभाग,
विद्या भवन गो.से. शिक्षक
महाविद्यालय,
उदयपुर

Add Aim of the
Study in your
paper...

की समयानुकूल विशेषताओं को अपने में समाहित किये थी जैसे— उनकी शिक्षा का यह स्वरूप पूर्णतः मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों पर आधारित था। उन्होंने स्वयं भी कहा है— “हमारी शिक्षा को क्रान्तिकारी होना चाहिए, दिमाग को हाथों के द्वारा प्रशिक्षित किया जाना चाहिए।” उनका यह सिद्धान्त सामाजिक दृष्टिकोण से भी बालकों में श्रम के प्रति महत्व, समाज सेवा की भावना, स्वावलम्बन जैसे— महत्वपूर्ण गुणों के विकास में महत्वपूर्ण है। बुनियादी शिक्षा राष्ट्रीय सभ्यता, संस्कृति, दर्शन और जीवन के करीब थी। साथ ही यह सामुदायिक जीवन के आधारभूत व्यवसायों जैसे— कृषि, बागवानी, कताई—बुनाई, मत्स्य पालन, चर्म—कर्म आदि जैसे आधारभूत कौशलों व व्यवसायों के शिक्षण की पैरवी करती है। गाँधीजी के ही शब्दों में “शिक्षा बेरोजगारी के विरुद्ध एक प्रकार का बीमा होना चाहिए।” वे बालकों को शिक्षा के माध्यम से आत्मनिर्भर बनाना चाहते थे। उनका मानना था बालक “कमाते हुए सीखें और सीखते हुए कमाएँ।”

गाँधीजी ने कहा था— “स्वावलम्बन बुनियादी शिक्षा की तेजाबी आँच है।” दूसरे शब्दों में शिक्षा वही है जो बालकों को आर्थिक, सामाजिक, नैतिक और बौद्धिक सभी प्रकार से स्वावलम्बी बनाएँ। गाँधीजी का विचार था कि “भारत जैसे निर्धन देश में शिक्षा अनिवार्य तभी हो सकती है जबकि ऐसा उपाय निकाला जाए कि बालक स्वयं अपनी शिक्षा के खर्च हेतु धन का उपार्जन कर सके।” बुनियादी विद्यालयों में बालक हस्तकौशल द्वारा शिक्षा प्राप्त करता है तथा उसके द्वारा बनाई हुई वस्तुओं को बेचकर इतना धन प्राप्त किया जा सकता है जिससे उसका खर्च निकल सके। गाँधीजी का विचार था कि बालकों की बनाई इन वस्तुओं को लोग भावात्मक कारणों से खरीदना चाहेंगे। यहाँ उनका यह तात्पर्य कतई नहीं था कि बालकों के परिश्रम से अध्यापक या विद्यालय अर्थोपार्जन करेंगे।

गाँधीजी के शिक्षा दर्शन में बालकों को सामाजिक जीवन के महत्व के ज्ञान पर विशेष ध्यान दिया गया है। जिससे उनमें समाज सेवा, सहकारिता आदि की भावना विकसित हो सके और एक ऐसे समाज की स्थापना हो सके जिसमें प्रत्येक सदस्य अपनी शक्तियों के अनुसार विकास करें और अपनी क्षमता वृद्धि तथा ज्ञान के अनुसार समाज विकास में योगदान दे सकें।

गाँधीजी मातृभाषा को शिक्षा का आधार मानते थे। उनका मानना था कि मातृभाषा को शिक्षा का आधार बनाने से ही देश की संस्कृति व साहित्य समृद्ध हो सकेंगे। इससे विभिन्न वर्ग के बालकों में भाईचारा बढ़ेगा और ऐसी शिक्षा राष्ट्रीय एकता, अखण्डता तथा सामाजिक समरसता बढ़ाने में सहायक होगी। गाँधीजी शिक्षा के माध्यम के रूप में अंग्रेजी के कट्टर विरोधी थे। उनका मानना था कि मातृभाषा में शिक्षा होने पर ही देश की संस्कृति और साहित्य समृद्ध होंगे और विभिन्न वर्ग में व्यक्तियों में भाईचारा बढ़ेगा। “गाँधीजी के शब्दों में “बालकों पर अंग्रेजी लादना उनके प्राकृतिक विकास को कुण्ठित करना है और सम्भवतया उनमें मौलिकता को नष्ट कर देना है।”

उन्होंने सीखने में समवाय पद्धति पर जोर दिया। जिसमें उनका मानना था कि समस्त विषयों की शिक्षा किसी कार्य या हस्तशिल्प के माध्यम से बालकों को दी जाए। इसी संदर्भ में ‘हरिजन’ में गाँधीजी ने लिखा है— “स्थानीय उद्योग अथवा दस्ताकारी ही शिक्षा की पूरी धुरी है, उसके द्वारा ही बच्चों को अन्य विषयों की शिक्षा प्रदान की जाये। क्योंकि यह उद्योग यंत्रवत नहीं बल्कि वैज्ञानिक आधार पर वस्तुओं और प्रक्रियाओं के क्यों और कैसे? पक्षों को समझने के अवसरों पर बल देती है।” इसमें सीखने के मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त निहित है। गाँधीजी का इस संदर्भ में कहना था “वही शिक्षा पक्की हो सकती है जो किसी दस्तकारी या पैदा करने वाले काम के लिए दी जाए और उस दस्तकारी के इर्द—गिर्द अन्य सब तालीम दी जा सके।”

गाँधीजी जीवन के अन्य क्षेत्रों के साथ—साथ शिक्षा के क्षेत्र में भी नैतिकता पर बल देते थे। इसी संदर्भ में उन्होंने लिखा है— “शिक्षा का मात्र और सम्पूर्ण लक्ष्य नैतिकता के प्रत्यय में संक्षिप्त किया जा सकता है।” शिक्षा का नैतिक लक्ष्य चरित्र निर्माण है। ऐसी शिक्षा बालकों में सहयोग, प्रेम, सत्य, अहिंसा, सहानुभूति जैसे गुणों का विकास कर किसी प्रकार की परिस्थिति आने पर स्वयं उचित—अनुचित का निर्णय लेने में सक्षम बनाती है। गाँधीजी तत्कालीन शिक्षा प्रणाली को जनतांत्रिय मूल्यों के विकास हेतु कृत्रिम व अव्यावहारिक मानते थे क्योंकि वह जीवन की वास्तविक समस्याओं को सुलझाने हेतु व्यावहारिक आधार नहीं प्रदान करती थी। उसके प्रशिक्षण से बालक को अपने परिवेश के प्रति समायोजन में कोई सहायता प्राप्त नहीं होती थी। वे शिक्षा को सक्रिय व सरस वातावरण में प्रदान करने के पक्षधर थे। जिससे बालक अपने परिवेश को समझ उस पर नियंत्रण पाने में कुशल हो सके।

गाँधीजी ने वर्तमान शिक्षा के इस दोष को स्पष्ट रूप से समझ लिया था कि वह बालक के जीवन से सम्बन्धित नहीं है। विषय विशेष का अध्ययन करके बालक किसी विषय का ज्ञात तो हो सकता है, परन्तु उसे अपने दैनिक जीवन हेतु उससे कोई व्यावहारिक सीख नहीं मिलती। अस्तु शैक्षिक चिंतन में इस बात की ओर ध्यान दिया गया है कि बालक को उसकी स्वाभाविक प्रवृत्ति के अनुसार प्राकृतिक और व्यावहारिक वातावरण में सीखने पर ध्यान दिया जाए। इससे उसे शिक्षा के द्वारा भावी जीवन में अनुकूलन करने में सहायता मिलती है।

गाँधीजी व्यक्तिगत विकास के साथ समाज की उन्नति का सदैव ध्यान रखते थे। गाँधीजी के शैक्षिक चिन्तन का लक्ष्य बालक में ऐसे नागरिक सुलभ गुणों का विकास करना था जिनसे वह जनतंत्रिय समाज का एक उपयोगी सदस्य बन सके। नागरिक सुलभ गुणों में सामाजिकता, कर्तव्यपरायणता, कर्मनिष्ठा, कर्तव्यपालन, उत्तरदायित्व को समस्या तथा प्रेम, सहानुभूति, सहयोग आदि सम्मिलित है। गाँधीजी के शैक्षिक चिन्तन में सामूहिक शिक्षा के द्वारा बालकों में इन गुणों के विकास की संकल्पना की गई है।

